अध्याय 6

कृष्णा सोबती और इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में भाषा और शिल्प

6.1- कृष्णा सोबती के उपन्यासों में भाषा और शिल्प

6.2- इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में भाषा और शिल्प

कृष्णा सोबती और इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में भाषा और शिल्प

भाषा सम्प्रेषण का प्रभावी तथा बहुमुखी माध्यम है। सामाजिक और बौद्धिक विमर्शों का आधार भाषा ही है। भाषा सोचने-विचारने के माध्यम के साथ ही सर्जनात्मक तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति का कलात्मक माध्यम है। दो या दो से अधिक भाषा का व्यवहार करने वाला व्यक्ति बहुभाषी होने के साथ ही बहुसांस्कृतिक भी होता है। प्रो. दिलीप सिंह 'भाषा का संसार' पुस्तक में लिखते हैं, "मनुष्य के विचारों का वैविध्य और उसके अनुभवों की अनेकानेक छवियाँ भी भाषा की संरचना तथा उसे जानने के विस्तार को प्रभावित करते हैं। भाषा किसी एक विषय, भाव अथवा विचार तक सीमित नहीं होती। उसका सम्प्रेषण तंत्र असीमित और सामाजिक संरचना की भाँति वैविध्यपूर्ण होता है।"[1]

भाषा के सम्प्रेषण तंत्र को वैविध्यपूर्ण कहने का आशय यह है कि भाषा की व्यवस्था रूढ़ अथवा जड़ नहीं है। आधुनिक भाषाविज्ञानियों द्वारा भाषा के 'मौखिक रूप' को लिखित भाषा से ज्यादा महत्व दिया है। भाषा की इस नई अवधारणा से अल्प समूहों की भाषा तथा अल्प ज्ञात भाषाओं को भी वही महत्व दिया जा रहा है जो परंपरागत भाषाविज्ञानियों द्वारा मात्र प्रचलित और बहुसंख्यक समूह की भाषाओं को दिया गया था।

भाषा और साहित्य एक-दूसरे के पूरक होते हैं। सामान्यतः किसी भाषा का अध्ययन उस भाषा में रचित साहित्य के आधार पर ही किया जाता है। जिस भाषा का साहित्य जितना उत्तम और समृद्ध होगा, वह भाषा भी उतनी ही समृद्ध होगी।

साहित्य के परंपरागत मानदंडों के अनुसार प्रायः स्त्री भाषा को पुरुष भाषा के मानदंडों पर ही मापा जाता है तथा पुरुष भाषा को स्त्री भाषा के आदर्श रूप में देखा जाता है। नए समीक्षा मानदंडों के अंतर्गत आज पाठ को मात्र पाठ, लेखक तथा पाठक के अंतस्सबंधों की दृष्टि से नहीं वरन पाठ किस तरह लिखा गया है, उसे किस तरह पढ़ा गया है या उसे किस तरह पढ़ा जाना चाहिए इन सभी बिंदुओं को समेटा जाता है। स्त्रियों द्वारा लिखित कृति को पढ़ते समय यह आवश्यक हो जाता है कि स्त्रियाँ समाज में सदा ही

दोयम स्थिति पर रखी गई हैं। अतः परंपरागत समीक्षा मानदंडों से यह नहीं समझा जा सकता कि स्त्री किस प्रकार सामाजिक दबाव, उपेक्षा इत्यादि को झेलते हुए लेखन कर रही है। स्त्री पाठ को परंपरागत भाषाशास्त्रीय सैद्धांतिकी के आधार पर जांचा और परखा नहीं जा सकता। 1926 में वर्जीनिया वुल्फ़ ने अपने निबंध 'वुमन एण्ड फिक्शन' के माध्यम से स्त्री भाषा के प्रश्नों को उठाया था। स्त्री वादी लेखिकाओं लुईस ऐरिगरी, हेलेन सिक्सू, मोनिका वीटिंग, सांद्रा गिल्बर्ट, सुसान गुबर, दिलयुजी तथा गुएतरी इत्यादि ने स्त्री भाषा के विभिन्न पक्षों पर अपनी बात रखते हुए स्त्री भाषा को पुरुष भाषा से भिन्न बताया है। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि स्त्री भाषा और स्त्री जैसी भाषा में अंतर है। यह आवश्यक नहीं कि स्त्री हमेशा स्त्री भाषा में ही लेखन करेगी, वह पुरुष भाषा का भी प्रयोग कर सकती है। इसी प्रकार पुरुष लेखक भी स्त्री भाषा का प्रयोग कर सकता है।

क्या स्त्री लेखन की अपनी एक अलग शैली है? क्या वे पुरुष लेखकों से भिन्न लिखती हैं? अमेरिकन स्त्रीवादी जॉयस कैरोल ओट्स का कहना है कि स्त्री लेखन और पुरुष लेखन के भिन्न-भिन्न खाँचों से परे साहित्यकार को अपनी एक निजी शैली अपनानी चाहिए- "Joys Carol Oates appeals for an individual style, for a sexless writing, beyond definition of male and female. To have a male or female style is symptomatic of inferior art where the female style might degenerate in to mere propaganda on women's issues."[2]

स्त्री भाषा की सैद्धांतिकी को समझने के लिए निम्न स्त्रीवादियों के स्त्री भाषा संबंधित महत्वपूर्ण विचारों से अवगत होना आवश्यक है।

वर्जीनिया वुल्फ़ के अनुसार उपन्यास के पहले शब्द से ही यह तय किया जा सकता है कि लेखक स्त्री है या पुरुष। वुल्फ़ मानती हैं कि स्त्रियों का अनुभूति मंडल, जीवन मूल्य तथा संवेदना के विशिष्ट होने के साथ ही शब्द चयन, टोन, बिम्ब विधान और प्रवाह भी प्रचलित भाषा से भिन्न होता है। जहां उनकी

कल्पना शक्ति, अवचेतन के विषय में उनकी अंतर्दृष्टि अधिक खुली हुई होती है वहीं उन पर मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दबाव भी कम नहीं होते।

वर्जीनिया वुल्फ़ के पश्चात स्त्री भाषा पर फ्रेंच स्त्रीवादियों द्वारा विस्तार से चर्चा की गई है। हेलेन सिक्सू, लुईस एरिगीरे, जूलिया क्रिस्टोवा इत्यादि ने जा लाँका के मनोविश्लेषण तथा देरीदा के विखंडनवाद के आधार पर भाषा की शिश्न केंद्रिकता पर प्रकाश डाला।

स्त्री भाषा की सैद्धांतिकी को निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

- स्त्री भाषा पुरुष वर्चस्व की भाषा को तोड़ कर ही प्राप्त की जा सकती है। स्त्री भाषा बुद्धि और तर्क की अपेक्षा हृदय के गूढ़तम भावों को महत्व देती है।
- स्त्री भाषा, स्त्री की जैविक संरचना से गहरे रूप से जुड़ी हुई है।
- स्त्री भाषा, लेखन परंपरा की पुरानी लीक को तोड़ते हुए, नए प्रयोगों की भाषा है जिसके अंतर्गत मानवीय अनुभूतियों का निष्पक्ष चित्रण सर्वोपरि है।
- मुहावरेदानी, लोकगीतों, लोक संस्कृति को आत्मसात करती हुई भाषा स्त्री भाषा की श्रेणी में आती है।
- सिम्बालिक की अपेक्षा सिमियाटिक का आधिक्य स्त्री भाषा की विशेषता है।
- आत्मकथा शैली का स्त्री भाषा से गहरा संबंध है।
- लेखन में स्त्रीभाषा को आत्मसात करने वाला पुरुष लेखक भी सही मायनों में स्त्रीवादी लेखक ही कहलाएगा।

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी गद्य लेखन की विशिष्ट शैली के लिए जानी जाती हैं। उनके रचनाकर्म के माध्यम से भाषा तथा शिल्प में उनकी प्रयोगशीलता का अंदाजा लगाया जा सकता है। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी के लेखन को स्त्रीवादी या स्त्री-लेखन की कोटि में विभाजित करने की पक्षधर नहीं रही हैं। चूंकि शोध का विषय कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में स्त्री विमर्श है अतः स्त्री भाषा और शिल्प की दृष्टि से दोनों साहित्यकारों के उपन्यासों का अध्ययन अपेक्षित है।

6.1- कृष्णा सोबती के उपन्यासों में भाषा और शिल्प

कृष्णा सोबती ऐसी रचनाकार हैं जिन्होंने पंजाबी भाषा की खूबसूरती, मिठास और उसके ठेठपन का परिचय हिंदी पट्टी के पाठकों से कराया है। कृष्णा सोबती अपने लेखन की विशिष्ट भाषाई शैली के लिए जानी जाती हैं। प्रमिला के. पी अपनी पुस्तक 'स्त्री अध्ययन की बुनियाद' में लिखती हैं, "कृष्णा सोबती उस समय की रचनाकार हैं जब राजनीतिक दृष्टि से नारीवाद की पृष्ठभूमि हिंदी में तैयार हो रही थी। अतः उनका रचनात्मक प्रयास बंधनों को खोलकर भाषाभिव्यक्तियों को आजाद करने की दिशा में अधिक मालूम पड़ता है। उनके वाक्य-गठन, खुलापन, कहने का ढंग, छोटे व अधूरे वाक्यों में धड़कने वाला स्त्री-जीवन, अटूट रचनात्मकता, सांस्कृतिक दखल पर अचूक भरोसा आदि इसी को प्रमाणित करते हैं। ये सब पूर्ववर्ती परंपरा में पुरुष दुनिया की संभावनाएं थीं जिन्हें अपनी सामर्थ्य व कौशल में किसी लेखिका ने स्वायत्त किया था।"[3]

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में भाषा, स्त्री भावों, संवेदना को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ है और यह बात उनके पहले उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' से ही देखी जा सकती है। इसकी भाषा गद्य भाषा की चलती परिपाटी से सर्वथा भिन्न नजर आती है। डार से बिछुड़ी की भाषा के संदर्भ में कृष्णा सोबती लिखती हैं, " 'डार से बिछुड़ी' का पाठ लिखने में कुछ ऐसा बना कि जैसे पहले ही लिखी जा चुकी इबारत को मन से कागज पर उतारना हो। कोई झिझक, संदेह या भाषाई उलझन नहीं हुई और फिरंगी

की छावनी में पहुँच कहानी अपने आप समाप्त हो गई।"[4] उपन्यास की पहली ही पंक्ति "जिएं-जागें!सब जिएं-जागें! अच्छे-बुरे, अपने-पराए जो भी मेरे कुछ लगते थे -सब जिएं!"[5] में उपन्यास का मूल छिपा हुआ है। उपन्यास की नायिका पाशो की ये पंक्तियाँ सबका कुशल चाहने वाली पाशो की जीवन के प्रति अटूट आस्था तथा उसकी जिजीविषा को भी अभिव्यक्त करती है।

कृष्णा सोबती ने उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' में सम्बोधन की विशिष्ट शैली को भी अपनाया है। उपन्यास में पाशो अपनी माँ को तरह-तरह से संबोधित करती है। यथा- "खोजों के घर पटरानी बनकर बैठ जानेवाली *नानी की बेटी* कैसी लगती होगी?"[6]

"मुझे अच्छी तरह कपड़ा ओढ़ा रानी-सी *शेखों की घरवाली* शेखजी की बैठक की ओर चली तो नीचे लटकता सुनहरी पराँदा इन आँखों में बस-बस गया।"[7]

"माँ के फलसई जोड़े पर मूँगिया ओढ़नी ओढ़ जब चबारेवाली बैठक में पँहुची तो *मामू की बहन* राँगली पीढ़ी पर बैठी बीज छीलती थी।"[8]

'डार से बिछुड़ी' में किशोरी पाशो के जीवन की यातनाएं जितना शब्दों से मुखरित हुई हैं उतना ही पाशो की चुप्पी भी पाठकों के हृदय पर गहरा प्रभाव छोड़ती है। उपन्यास से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

छोटे मामू द्वारा तिरस्कृत पाशो का निशब्द रोना, "एक बार तो आँसू छलके, फिर ओढ़नी मुहँ में डाल रोती रही! खड़ी रही-खड़ी रही। फिर जलती रोटी तंदूर से निकाल चँगेर में डाली और दूसरा पूर लगाने लगी।[9]" देवर के द्वारा शारीरिक शोषण का शिकार पाशो कुछ नहीं कह पाती। "पड़ी रही... पड़ी रही... पड़ी रही...उठी नहीं"[10] का ये वाक्य पाशो की वेदना और प्रतिकार को अभिव्यक्त करता है।

'डार से बिछुड़ी' की भाषा के विषय में राजेंद्र यादव का कहना है, "इतनी लंबी कहानी के जिन मूलभूत नाटकीय क्षणों कों पकड़ कर कृष्णा जी ने सवा-सौ पन्नों में कहा है, उसे मुझ जैसा लेखक कम-से-कम पाँच सौ पन्नों में कहता। इसके लिए सबसे पैना और प्रभावशाली हथियार उनके पास है भाषा, जो सारे

लोक-कथात्मक माहौल के साथ-साथ अनुभव और स्थिति को खड़ा कर देने के लिए सिर्फ एक या दो शब्द चाहती है- ऐसे शब्द जो सिर्फ औरत ही जी सकती है, सोच या कह सकती है। "[11]

उपन्यास 'तिन पहाड़' में कृष्णा सोबती ने दार्जिलिंग शहर के प्राकृतिक सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए नवीन रूपकों का प्रयोग किया है। उपन्यास से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं, "खिड़की में से चाँदी के शिखर देखते-देखते मन का समूचा आँगन मुखर हो आया।"[12]

"आसपास फैली दार्जिलिंग की बस्तियाँ हरियाले आँचल पर बिखरी लाल-पीली बिन्दिकियों-सी लगती थीं।"[13]

"आकाश की चूनर रह-रह पहाड़ों पर लहराती। पतली बल खाती राहें दो जोड़ी पाँव से लिपट-लिपट जातीं और दूर बैठी सयानी सखी-सी कंचनजंघा हर मोड़ से, हर ठौर से मुस्करा जाती।"[14]

पर इसी सुंदर शहर की खूबसूरती को उपन्यास की नायिका जया की मृत्यु के पश्चात कुछ यूँ चित्रित किया गया है, "पहाड़ों की अँधियारी उदासी में सिर डाले चायबागान और उनपर घिर-घिर आते साँझ के रख-रंग साए। राह-किनारे बिछे काले पेड़ों की पाँत उन्हीं निराश बालों की छाँह-सी पहियों के संग-संग भागती गई, रात की निलाई आकाश के पानी पर काँपती रही और डूबते सूरज की अंतिम लौ धरती और आकाश की देहरी फलाँग कहीं अज्ञात हो गई।[15]"

उपन्यास 'मित्रो मरजानी' की भाषा के संबंध में कृष्णा सोबती लिखती हैं, " 'मित्रो मरजानी' में मैंने राजस्थानी के साथ दिल्ली को भी मिलाया, हालाँकि उससे पंजाबी की भी गंध आती है। मैं यह छूट इसलिए ले पाई कि मैंने गुरदास और धनवंती के परिवार को पंजाब-राजस्थान के बॉर्डर पर स्थित किया है। 'मित्रो मरजानी' में चाहे मित्रो की हठ, मनुहार, जिद्दीपन, फूलावंती का गुस्सा, भागवन्ती और सुहाग की हिदायतें, इन सभी की अभिव्यक्ति नितांत स्त्री भाषा में ही की जा सकती है।

उपन्यास से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं, "मैं सदके बलिहारी! अपने जेठ की सती-सावधी नार पर! जिठानी, मेरे जेठ से कह रखना, जब तक मित्रो के पास यह इलाही ताकत है, मित्रो मरती नहीं।"[16]

"मान गई, फूलाँ रानी, मान गई! गुलजारी, तेरी इस बन्नो को न धड़की है, न कोई दर्द, न कमजोरी। यह तो गले-गले गहरे चरित्र हैं। गुलजारी देवर, तुम मिट्टी के माधो बने रहे तो एक दिन तुम्हारी अकल-बुद्धि सब चुरा ले जाएगी यह चोट्टी!"[17]

'जिंदगीनामा' में ग्रामीण पंजाब की स्त्रियों के स्वभाव और संस्कार को कृष्णा सोबती पूरी कुशलता से पन्नों पर उतार पाई हैं। उपन्यास में ग्रामीण पंजाब की बोलियों के आधिक्य के कारण हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार अमृतलाल नागर द्वारा 'जिंदगीनामा' की पाठकों तक संप्रेषणीयता पर प्रश्न उठाया गया था परंतु जिंदगीनामा की सफलता ने इन तर्कों को खारिज कर दिया था। भाषा में बोलियों के मेल के संबंध में कृष्णा सोबती का कहना है, "भाषा और बोलियों का आपसी आदान-प्रदान किसी भी भाषा के लिए वरदान है। भाषा की शब्द-संपदा और अभिव्यक्ति की संपन्नता गहरे तक इससे जुड़ी है। भाषा की विशुद्धता पर जरूरत से ज्यादा जोर देना भाषा की स्फूर्ति छीन लेता है। हमें बोलियों की ओर देखना है। उनके स्रोत से वह सब चुनना है जो हमारे भाषायी संस्कार को समृद्ध करता है।"[18]

इस संदर्भ में उपन्यास की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं- "शरद पुण्या की रात।

पिंड के कच्चे कोठे चम्म चम्म चमकने लगे। दमकने लगे। चान्ननी ने सजरी लिपाई से खेत-खलियान रुख-वृख सब उजरा-उजला दिए। बेटे-बच्चड़ों के साथ घरों को लौटती बलदों की जोड़ियाँ जी की तृखा प्यास जगाने लगी। चूल्हों से उठती उपलों की कच्ची गन्ध हर कोठे हर चौके को महकाने-लहकाने लगी। रब्बा, ये सोहणे समय मनुक्खों के साथ लगे रहें। सजे रहें।"[19]

उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से ग्रामीण पंजाब में शरद पूर्णिमा की रात की प्राकृतिक सुंदरता को दर्शाया गया है।

'दिलोदानिश' में पुरानी दिल्ली के रईस-रसूखदार लोगों की पुश्तैनी हवेली की स्त्रियों की भाषा और महकबानो की अदबी भाषा, स्त्री भाषा की सम्पूर्ण विशेषताओं से लैस है। हिंदी उर्दू के शब्दों से गूँथी

दिलोंदानिश की भाषाई बुनावट दिल्ली की साझी संस्कृति को अभिव्यक्ति देती है। उपन्यास से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं,-

"इस बार जो चिल्ला पड़ा तो शहर-भर को कँपकँपी लग गई। गहराता जाड़ा लाल किले की महराबों को फलाँग जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर पसर गया। रजाइयों, दुलाइयों और निहालियों के ढेर। हवा में झिलमिलाती पतली धूप। रंग-बिरंगी रजाइयों में पड़ते डोरे मानो दिल्ली के बाशिंदों पर आड़ी-तिरछी खींचने लगे।"[20]

"गर मुझसे खफ़ा हैं तो/ उसे दीजिए निकाल,/ आप कौन रखने वाले हैं/ दिल में मलाल को।"[21]

'दिलोंदानिश' उपन्यास की भाषा के संदर्भ में स्टीफेनिया कैविलरी लिखती हैं, "The composite 'Ganga-Jamuni Tehzeeb' that is experienced by Kripanarayan in his everyday life is reflected in the hybridized Hindi spoken in the novel, which reproduces the language widely used in the entire Indo-Gangetic region, in its multi-layered richness of styles and tunes that make it suitable to adjust to speakers from the most disparate cultural backgrounds."[22]

'ऐ लड़की' की भाषा माँ-बेटी के बीच खड़ी बोली में संवाद है जो इसको नाटक की भाषा शैली से जोड़ती है। 'ए लड़की' की भाषा के विषय में कृष्णा सोबती लिखती हैं, " 'ए लड़की' के बीज-मंत्र की ओर लौटें तो कहना होगा कि जिन शब्दों ने इस कहानी की पहली आहट मुझे दी थी वे तो कहानी के बाहर ही खड़े रह गए। वे शब्द थे- 'चिराग जलता रहेगा- चिराग जलता रहेगा- चिराग जलता रहेगा।' लेखक शब्दों से सरसरी तौर पर काम नहीं लेता। वह शब्दों और संवेदनाओं को एक-साथ चाहता है। शब्द ऐसे जो न भारी, न हल्के, न गहरे, न साथी, न मूक, न मुखर, न वजनी, न हवा में लहराते-भाषा गूँथती है, जिसे लेखक अपने अंतर में महसूसता है और अपने बाहर को सोखता है, अपने में जज़्ब

करता है, गोचर और अगोचर को शब्दों में साधता है। इसमें निपुणता न लेखक की और न शिल्प के कौशल की ही।"[23]

उपन्यास से माँ-बेटी के मध्य संवाद का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-" – इस परिवार को मैंने घड़ी मुताबिक चलाया, पर अपना निज का कोई काम न सँवारा।

लड़की, इस समय इस बात का बड़ा कष्ट है मुझे।

लड़की विस्मय से-

-किस पर मन था अम्मू? क्या करना चाहती थीं?

-चाहती थे पहाड़ियों की चोटियों पर चढ़ूँ। शिखरों पर पहुँचूँ। पर यह बात घर की दिनचर्या में कहीं न जुड़ती थी। किसे कहती? तुम्हारे पिता जी को?

घर-गृहस्थी के झमेले ही उनके बस के नहीं थे। ऊपर से आदत ऐसी कि न कुछ देर से हो और न ही जल्दी। मैं आप ही घड़ी बनी रही।"[24]

काव्य विधा को स्त्री विधा कहना अनुचित नहीं है। काव्य विधा में ही सिम्बालिक के स्थान पर सिमियाटिक का आधिक्य होता है। सिमियाटिक भाषा का प्राक भाषाई रूप है। यह उल्लेखनीय है कि कृष्णा सोबती ने लेखन की शुरुआत काव्य लेखन से ही की थी परंतु शीघ्र ही रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने गद्य विधा को चुना। स्त्री भाषा की प्रमुख विशेषताएं काव्यात्मकता और लयात्मकता उनके गद्य में भी स्पष्टतया परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', जिंदगीनामा' 'समय सरगम' तथा 'चन्ना' इत्यादि को लिया जा सकता है। नज़मों, शेरो-शायरी से युक्त 'दिलोदानिश' की भाषा भी इसका उदाहरण है।

उपन्यास 'समय सरगम' से भाषा में काव्यात्मकता तथा लयात्मकता के उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

"निःशब्द है समय, पर इसमें भी बहुत कुछ धड़क रहा है।"[25]

"समय सरगम।/ समय एक राग।/ नहीं। समय में निबद्ध हैं अनेक राग।/ अनेक बंदिशें।"[26]

"आदिम षडज और निषाद।/ पहला स्वर आदिम। जन्म-स्वर।/ षडज, तरुणाई स्वर।/निषाद, इस मानवीय आख्यान का अंतिम स्वर।/ बचपन, यौवन और यह पकते हुए मौसम का सुर निषाद।/ जब तक हो, इन्हें गुँथे रहने दो।/ तभी है यह सरगम।/ समय सरगम।"[27]

स्त्री भाषा के सिद्धांतकारों का कहना है कि स्त्री भाषा का कोई लिखित इतिहास नहीं है। अतः यहाँ प्रयोगशीलता की अपार संभावनाएं हैं। कृष्णा सोबती की भाषा आमजन की भाषा है। भाषा में स्त्री तत्व भी होते हैं और लेखक मर्दाना भाषा का भी व्यवहार कर सकता है। कृष्णा सोबती 'डार से बिछुड़ी' की तुलना में 'यारों का यार' की भाषा को मर्दाना मानती हैं। वे कहती हैं, "मैं 'डार से बिछुड़ी' का नाम लेना चाहूँगी। एक दूसरा माध्यम 'यारों के यार' सा होता है। कड़ा, खुरदुरा और मर्दाना।"[28] कृष्णा सोबती स्त्री लेखन और पुरुष लेखन के विभाजन को नहीं मानतीं। लेखन के माध्यम से वह भारतीय संस्कृति की अर्धनारीश्वर की अवधारणा पर बल देती हैं। 'यारों के यार' तथा 'हम हशमत' की भाषा से कृष्णा सोबती के इस तथ्य की पुष्टि होती है। स्टीफन हीथ भी बाइसेक्सुअलिटी को मुख्यतः स्त्री लेखन से जोड़ कर देखती हैं, वे लिखती हैं, "Bisexual writing is therefore overwhelmingly likely to be women's writing, though some exceptional men may in certain cases manage to break with their 'glorious mono sexuality' and achieve bisexuality as well."

इसके अतिरिक्त प्रयोगशीलता के संदर्भ में देखने पर हम यह भी पाते हैं कि कृष्णा सोबती ने लेखन की प्रचलित पद्धति को न अपनाकर क्षेत्र के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। 'डार से बिछुड़ी', मित्रो मरजानी' जिंदगीनामा की भाषा जहाँ पंजाब के ग्रामीण इलाके के भाषा संस्कार को गूँथती है वहीं 'तिन पहाड़' की भाषा सभ्रांत वर्ग की खड़ी बोली है। चन्ना की भाषा ग्रामीण और शहरी संस्कृति का मेल है। इस तरह का भाषाई वैविध्य कृष्णा सोबती की रचनाओं में प्रयोगशीलता की पुष्टि करता है जो स्त्री भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता है। कृष्णा सोबती इस संदर्भ में कहती हैं, "रचना का तापमान, उसका

पर्यावरण उस भाषा से बनता है जो उस रचना का मर्म, अर्थ और भाव संयोजित करती है। अपने बारे में कह सकती हूँ कि हर रचना अपनी शर्तों पर मुझे प्रतिस्थापित करती है। मेरे चैतन्य में प्रवेश करती है। उस मेहमान की तरह जो अपनी मूल्यवान उपस्थिति से या तो मेरा कोश भर सकता है या मुझे नीलाम कर सकता है।"[29]

भाषा को लेकर कृष्णा सोबती ने रचनात्मक प्रयोग किए हैं। स्त्री-यौनिकता को अभिव्यक्त करने के लिए कृष्णा सोबती जो भाषा गढ़ती हैं वह सर्वथा नवीन है। अपने निबंध 'the Laugh of the Medusa' में फ्रेंच स्त्रीवादी हेलेन सिक्सू लिखती हैं कि स्त्रियों ने अभी तक सेक्सुअलिटी के विषय में नहीं लिखा है। "Almost everything is yet to be written by women about femininity: about their sexuality, that is, its infinite and mobile complexity…"[30] रोचक तथ्य यह है कि हेलेन ने यह बात यूरोपीय साहित्य के संदर्भ में 1976 में लिखी किन्तु कृष्णा सोबती ने उनसे करीब एक दशक पूर्व इस चुनौती को समझा और हिंदी साहित्य में मित्रो के माध्यम से इसे अभिव्यक्ति दी। अपने आलेख 'लेखक के रूप में स्त्री' में कृष्णा सोबती हेलेन सिक्सू को उद्धृत करते हुए लिखती हैं, "स्त्री लेखक होने के नाते मुझे पता है कि हेलेन सिक्सू क्या कह रही हैं। लेखक के रूप में मुझे ये भी पता है कि लेखन का संसार पुरुषों के अधीन है। साहित्य की राजनीति और रणनीति उनके ही हाथों में है। लेकिन इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि लैंगिक राजनीति के बावजूद स्त्रियों की अपनी दृष्टि के चलते स्त्री-लेखन से एक बड़ा संसार रचा जा चुका है।"[31] स्त्री भाषा के स्तर पर यह अभिव्यक्ति के नितांत नए रूप का संधान है जिसके विषय में कृष्णा सोबती का कहना है, "अब स्त्री अपनी अभिव्यक्ति में सेक्सुअल मनोवृत्तियों और प्यार को लेकर अपने भावों को भी व्यक्त करने लगी है। इस पर लिखने का पहले पुरुष का ही अधिकार रहा। अब यह चमत्कार स्त्री के पाले में है। वह स्वयं को उद्घाटित कर रही है और अपने वैभव में एक साथ पुरुष के पुरुषत्व और उसकी सीमाओं को भी देख रही है। अब वह एकत्व में अपने को भी ढूँढ़ती है। और पुरुष के स्वरूप को भी नई नजर से, नई भाषा में गढ़ रही है, नए शब्द ढूँढ़

रही है। पुरुष के नीचे पड़े रहने की दैहिक प्रताड़ना से उबर रही है। "(सोबती-बैद संवाद, पृ. सं.- 148-149)।

'सूरजमुखी अंधेरे के' में रत्ती और दिवाकर के प्रणय-प्रसंग अभिव्ययक्ति में वे जिन रूपकों को गढ़ती हैं वह स्त्री भाषा के संदर्भ में उनकी रचनात्मक उपलब्धि है। इस संबंध में मीनाक्षी भारत अपने आलेख "Word Sculpture, Krishna Sobti' में लिखती हैं, "Yet, paradoxically, the metaphors are all from nature, the act variously described in terms of a river(भागीरथी भींच लानी हो), of blossoming trees (सेमल के फूल बिखरते रहे), of tender branches, of sprouting fresh grass, of a reserve forest and snow-clad mountains."[32] स्त्री भाषा के सिद्धांतकारों ने विखंडनवाद के आधार पर स्त्री की सम्प्रेषण संरचना में deconstruction का आधार लिया है। विखंडित, एक केन्द्रीय नहीं बहुकेंद्रीय। लुईस इरिगीरे ने यह भी कहा है कि पुरुष की यौन तंत्रियाँ एक केन्द्रीय होती जबकि स्त्री की बहुकेंद्रीय। यही बहुकेंद्रीयता उसके भाषा को अनुभूति प्रधान बनती है। लुईस इरिगीरे के कथन की पुष्टि कृष्णा सोबती की रचनाओं में मिलती है।

आत्मकथा शैली विमर्शों के लेखन की शैली मानी जाती है। कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' की शाहनी का किरदार कृष्णा सोबती की नानी से प्रेरित है। इसी शाह-शाहनी की कथा का विस्तार उनके उपन्यास 'जिंदगीनामा' में दिखाई देता है। 'ऐ लड़की', 'समय सरगम', 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' में आत्मकथा शैली की प्रयोगशीलता दिखाई पड़ती है।

अपनी बात को सीधा-सीधा न कह कर व्यंजना में अभिव्यक्त करना स्त्री भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता है। मुहावरों, लोकोक्तियों तथा लोकगीतों का प्रयोग इसी व्यंजना के अंतर्गत होता है। 'जिंदगीनामा' तथा 'चन्ना' की भाषा में व्यंजना का प्रयोग मिलता है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों का बिम्ब विधान भी बहुत महत्वपूर्ण है। अपने बिंबों में नया प्रयोग करते हुए उन्हें स्त्री तत्वों से भरा है। 'धूप की उजली ओढनियाँ', 'दूध की बूँद उमड़ी' इत्यादि स्त्री तत्वों से युक्त बिम्ब हैं।

कृष्णा सोबती के लेखन को किसी बने-बनाए खाँचे में उनके लेखन को फिट नहीं किया जा सकता। 'जिंदगीनामा', 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' तथा 'चन्ना' के अतिरिक्त उनके जितने भी उपन्यास हैं वह उपन्यास और लंबी कहानी के बीच की श्रेणी में आते हैं। "कृष्णा सोबती द्वारा साहित्यिक लेखन की एक ऐसी विधा के चुनाव करने पर, जो बीच में कहीं पड़ती थी, शुभ्रा नागिया ने लिखा है, "वे साहित्यिक लेखन और मानकों की स्थापित शैलियों को ठेंगा दिखा रही थीं। जिन मानकों का वे अतिक्रमण कर रही थीं, वे ऐसे मानक थे जो पाठकों के लिए सुविधाजनक होते थे क्योंकि पाठक इसे अपनी फुरसत के दौरान पढ़ लिया करते थे।"[33] 'सूरजमुखी अँधेरे के' शिल्प के विषय में डॉ. रति सक्सेना लिखती हैं, "शिल्प की दृष्टि से यह लघु उपन्यास महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें गल्प के स्थान पर अंतर्द्वन्द्व की उलझी रेखाएं हैं, जिसमें पाठक को कभी-कभी कोशिश कर गुजरना पड़ता है।...यह उपन्यास कविता-सा-स्वाद देता है। ऐसा लगता है कि एक कविता नायिका के मन में और एक पाठक के मन में लगातार चलती जा रही है।"[34] 'सूरजमुखी अँधेरे के' में कथा का विभाजन नायिका रतिका के जीवन के विभिन्न पड़ावों के साथ उसकी मनःस्थिति को अभिव्यक्ति करता है। 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' में जिस तरह से कथा फ्लैश बैक और वर्तमान में साथ साथ चलते हुए विभाजन के बाद की सियासी तस्वीर के भविष्य का संकेत देते हुए समाप्त होती है। इससे कथ्य के विशिष्ट शिल्प का बोध होता है। परंतु स्वयं कृष्णा सोबती अपने लेखन में शिल्प से ज्यादा महत्व कथ्य को देती हैं, इस संदर्भ में कृष्णा सोबती लिखती हैं, "किसी भी सृजनात्मक रचना में अगर सोच नहीं, जिंदगी को समझने-महसूस करने के आग्रह नहीं, तो मात्र शिल्प के बल पर कोई जीवंत रचना उभारी नहीं जा सकती। सत्य की खोज और मूल्यों की शिनाख्त कर उन्हें साहित्य में स्थापित करना जीवन और कला के संदर्भ में दो हिस्सों में नहीं बँटा है। एक होकर ही वह व्यक्ति के, समाज के व्यापक सत्य को प्रस्तुत करता है। जीवन

के किसी छोटे-बड़े टुकड़े को, स्थिति को, घटना को सिर्फ कलात्मक क्षमता से, शिल्प से प्रस्तुत भर कर देने से कालजयी साहित्य नहीं गढ़ा जा सकता। साहित्य को तो उगना होता है रचनाकार की आत्मा में।"[35] कृष्णा सोबती मानती हैं कि स्त्री के अनुभवों की भिन्नता का प्रभाव उसके लेखन में भी परिलक्षित होता है। 'सोबती-वैद संवाद' में जब वैद यह कहते हैं कि वे और कृष्णा सोबती सही मायनों में समकालीन हैं क्योंकि दोनों ही हमउम्र और एक ही प्रांत का होने के साथ ही दोनों के ही लिए विभाजन की विभीषिका आँखों देखी है, परंतु कृष्णा सोबती यहाँ इन समानताओं के साथ अनुभव के नजरिए में भिन्नता पर जोर देते हुए कहती हैं, "बेशक हम इन समानताओं के बरक्स असमानताओं और विभिन्नताओं की बात करें तो हम एक-दूसरे की लेखन प्रक्रिया को कहीं बेहतर समझ सकेंगे।... अनुभव की यह प्रक्रिया बहुत सी विभिन्नताओं में प्रकट हो सकती है। यहाँ तक कि कथ्य और शिल्पशैली में भी।"[36]

स्टीफेनिया कैवलीरे अपने आलेख "Polyphonic Voices in the Works of Krishna Sobti' में लिखती हैं, "From a literary point of view, transgressing 'the boundaries of single-language literary canons', multilingualism could be cherished as a resource in all its forms of expression by maintaining a multivocal literary canon for India. An outstanding example of this polyphonic narrative of India, deeply rooted in its soil and its languages, searching for a socio-historical ethos rather than a pan-Indian universalist mode, is offered by Krishna Sobti."[37]

अशोक बाजपेयी कृष्णा सोबती की भाषा के विषय में लिखते हैं, "इसमें संदेह नहीं कि कृष्णा जी ने जो कथा-भाषा गढ़ी, वह सिर्फ हिंदी और पंजाबी के मेल से नहीं बल्कि महाकाव्यात्मक दृष्टि और अदम्य लालित्य बोध से गूँथी हुई है। उसमें एक ओर विराट जीवन का अचूक स्पंदन है तो दूसरी ओर साधारण जीवन की सहज ऐंद्रियता और उसके छोटे-छोटे अक्स अनदेखे रह जाने वाले ब्योरों की झिलमिल आभा। "[38]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती की भाषा स्त्री भाषा के मानकों पर पूरी तरह से खरी उतरती है। स्त्री तत्व, भाव-भंगिमा टोन, काव्यात्मकता, प्रयोगशीलता , आत्मकथा शैली इत्यादि उनकी भाषा की विशेषताएं हैं।

6.2- इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में भाषा और शिल्प

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों का भाषाई वैविध्य उनके रचनात्मक कौशल को दिखाता है। इंदिरा गोस्वामी के लेखन का ज्यादा समय असम से बाहर बीता है अतः उनके लेखन में वाक्य गठन, टोन इत्यादि अन्य असमिया साहित्यकारों से कुछ अलग है। उन्होंने मूलतःअसमिया में ही लिखा है। असमिया भाषा एक भावप्रधान भाषा है। इंदिरा गोस्वामी के रचनाकर्म में भाषा पर उनकी इस पकड़ को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसा कि दिब्यज्योति शर्मा लिखते हैं गोस्वामी अपने फिक्शन में भावों तथा संवेदनाओं पर पाठकों का ध्यान केंद्रित करने के लिए वाक्यों तथा पदबन्धों का प्रायः ही दुहराव करती हैं, "Goswami was acutely aware of this 'performative aspect'of the language and used it to great advantage in her language. Thus, in her fiction, we notice repetition of sentences or phrases to highlight the intensity of emotion. This extends to her use of affirmative and negative-yes, yes and no, no. At times she would prefix the affirmation and negation to a sentence to add more drama to the feeling."[39] उदाहरण के लिए उपन्यास 'नीलकंठी ब्रज' में सौदामिनी तथा उसके क्रिश्चियन प्रेमी के मध्य संवाद को लिया जा सकता है। अपने प्रेमी को धीरज बँधाते हुए सौदामिनी कई शब्दों का दुहराव करती है, पंक्तियों को पढ़ते हुए विकल सौदामिनी का चेहरा सामने आ जाता है।

वह कहती है, ": धरा, तुमि मोक आरू भालदरे सारटि धरा। तुमि काँदिछा। मानुह कए तुमि ख्रीस्तान। तुमि ख्रीस्तान। अथच एया, एया मोर बुकुत तोमार देहर उम एकेइ- विश्वास करा सुव्रत, मरमर स्वामीर देहर सेते एकेइ-एकेइ! एकेबारे एकेइ!"[40]

श्रमिक जीवन पर आधारित तीन उपन्यासों 'चेनाबेर स्रोत', 'अहिरण' तथा 'मामरे धारा तारोवाल की भौगोलिक पृष्ठभूमि असम प्रदेश के बाहर की है। 'चेनाबेर स्रोत' 'अहिरण', 'मामरे धरा तारोवाल' में कन्स्ट्रक्शन साइट पर प्रयुक्त होने वाले तकनीकी शब्दों के प्रयोग के साथ ही उसकी पूरी कार्यप्रणाली को भाषा के माध्यम से इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि इस पूरी कार्यप्रणाली की इंदिरा गोस्वामी को अच्छी तरह समझ है तभी उनके पात्र जिस भाषा का व्यवहार करते हैं उससे वह उपन्यास के काल्पनिक पात्र नहीं वरन वर्क साइट्स पर नियुक्त अभियंता, श्रमिक ही नजर आते हैं। उपन्यास 'मामरे धरा तारोवाल' तथा 'अहिरण' से असमिया भाषा के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

"एया सारेंगखारार ताप्ती नदिर दलनर काहिनी। बूढ़ा फोरमैन एटिक गार्डार .. सुपर-भाईजर करि दिया हेछिल। प्रिकाष्ठे गार्डारबोर आछिल ऐश पंईसत्तर फुट दीघल आरू चेधो फुट उख। कॉम्पानिए प्रथमबारर बाबे एनेकूवा आहल-बहल गार्डार करिछिल।

एदिन एई प्रिकाष्ठे गार्डारक दह फुट काषले आँतरोवार प्रयोजन हेछिल।

गार्डारर दूजो शेषान्श रलारर उपरत थे चेन ब्लॉकेरे टानिर धरिले। छय-सात फुट आँतरोवा हेछिल। बाकी आछिल मात्र तिनि फुट। खालासिर छूटीर समय हेछिल, लरालरिके काम शेष करि उभति जाबले सिहँत अधैर्य हे परिछिल...रलारर तलत जि काठेर पैकिंग आछिल सि ह'ब लागिछिल चिधा समान्तराल ; किन्तु हयात बोध हय स्लोप आछिल।...गाडरि एक भयानक गतिरे ढहि जाब धरिले।"[41]

("यह सारंगखेड़ा में ताप्ती पर बने पुल की कहानी है। एक बूढ़े फोरमन को एक शहतीर लगाने के काम के लिए सुपरवाइजर बनाया गया था। ढलाई किए हुए शहतीर की लंबाई एक सौ पचहत्तर फीट और चौड़ाई चौदह फीट। कंपनी ने पहली बार इस तरह के लंबे-चौड़े शहतीर का प्रयोग किया था।

एक दिन इस ढलाई किए हुए शहतीर को दस फीट दूर हटाने की जरूरत पड़ी।

शहतीर के दोनों सिरों को बेलनों पर रख ब्लॉक चेन के जरिए खींचा गया। छः-सात फीट हटाया गया और तीन फीट हटाना बाकी था। मजदूरों की छुट्टी का समय हो गया था। जल्दी से काम खतम कर एक

साथ जाने के लिए वे उतावले हो रहे थे...बेलनों के नीचे जो काठ की पैकिंग लगाई गई थी उसे सिद्ध में होना और जमीन के समानांतर होना जरूरी था। लेकिन यहाँ पर शायद ढाल थी क्योंकि शहतीर ढलान की ओर भयानक गति से सरकने लगा।"[42])

उपन्यास 'मामरे धरा तारोवाल' में कॉनवेयर बेल्ट पर मीक्सिंग ड्राम की सहायता से कंक्रीटिंग की प्रक्रिया को समझाती असमिया भाषा की पंक्तियाँ निम्नवत हैं-

" 'कंक्रीट' आरंभ होछे कनभेयर बेल्टेर 'चिरिर मालाको' आजि धूलिए ढाकि धरिछे। मिक्सर ड्राम चक्राकारे घूरि आछे। कनभेयर बेल्टत पानी नपरिबले दिया सरु पार्टिक सदृश चालिखनर तलत दूजो आहि थिय हल।"[43]

'मामरे धरा तारोवाल' का कथानक उत्तर प्रदेश के राय बरेली जिले में सई नदी पर ऐक्वेडक्ट निर्माण के कार्य पर आधारित है अतः भाषा में असमिया के साथ हिंदी शब्दों का प्रयोग किया गया है। औजारों मशीनों इत्यादि के लिए अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है। साहित्य अकादमी से पुरस्कृत रचना 'मामरे धरा तारोवाल' के विषय में प्रतिष्ठित असमिया साहित्यकार हीरेन गोहेन लिखते हैं, "The language in The Rusted Sword' is bare and banal, quite like the backdrop of the story itself."[44]

उपन्यास में वर्कसाइट का काम खत्म होने के पश्चात मजदूरों का मदिरापान कर नशे में धुत्त हो कर बड़बड़ाना आम बात है। शिबू धासला और लीचू लेंगरा के मध्य ऐसे ही बड़बड़ाने का उपन्यास से असमिया भाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है-

"थक! राक्षस!! कय बोले मरिबले बेछीदिन नाई आरु-

काको भय नकरे सि!

नारायनीको भय नकरे सि!!

राक्षस..."[45]

उपन्यास के कथानक का आधार में श्रमिकों की लंबी हड़ताल है। क्षेत्रानुसार भाषा-व्यवहार इंदिरा गोस्वामी के लेखन की विशेषता है। हड़ताल में श्रमिकों द्वारा लगाए जाने वाले नारे हिंदी में ही लिखे गए हैं तथा असमिया लिपि का प्रयोग किया गया है, यथा

"लाल झण्डा करे पुकार।"

"इंकलाब जिंदाबाद!"

"हमारा माँग पूरी करो, नहीं तो गद्दी छोड़ दो!"

"मैंनेजमेंट का धोखाबाजी नहीं चलेगी-नहीं चलेगी!"

"लाल झण्डा..।"[46]

इंदिरा गोस्वामी लेखन में लोप निर्देशों तथा नियोजक चिन्हों का प्रयोग बहुतायत करती हैं, यथा-

"तोमार कथा आमि सुनिछो। तुमि हरिजन श्रमिक। तुमि युनियनेर मेम्बर होर परा बर सोभाग्येर कथा.... आरु....सुना...."[47]

दिब्यज्योति शर्मा इंदिरा गोस्वामी की इस शैली की तुलना एमली डिकन्सन की कविताओं के लोप निर्देशों तथा नियोजक चिन्हों से करते हैं। एमली डिकन्सन द्वारा कविताओं में प्रयुक्त नियोजक चिन्हों का महत्व व्याकरणिक दृष्टि से नहीं बल्कि उनकी कविताओं के अर्थ के संदर्भ में है, यही बात इंदिरा गोस्वामी पर भी लागू होती है, "Then there are her uses of ellipses. Taking a leap, we can compare Goswami's ellipses to Emily Dickinson's use of long dashes in her poems. As scholars have argued that the long dashes in her poems do not make grammatical sense yet they make sense within the context of her poem. Same is applicable to Goswami's use of ellipses. She uses more ellipses in a page than a

traditional English language literary editor would allow in her lifetime. Yet, these small quirks add to the poetry of Goswami, which perhaps wouldn't fit within the rigid confines of the English language."[48]

'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में वैष्णव सत्रों का, 'चेनाबेर स्रोत', 'अहिरण' तथा 'मामरे धरा तारोवाल' में कन्स्ट्रक्शन साइट्स का तथा 'छिन्नमस्ता' में गुवाहाटी के कामाख्या मंदिर के चित्रण में उस स्थान से संबंधित छोटी-बड़ी प्रत्येक बारीकी का जीवंत चित्रण किया है, इस संबंध में दिब्यज्योति शर्मा लिखते हैं, "One of the abiding features of Goswami's writing is her use of concrete imagery to convey the inner lives of her characters and she wouldn't be satisfied with using universal images. She would pick her images from the locale where her story is based. If the setting of her novel is a village, she would use the village flora and founa to convey the inner working of her characters, if it's a city, she would use city landscape such as ruined buildings, clothing of the people on the street and such."[49]

'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में असम के कामरूप जिले के दक्षिण प्रांत की बोली की प्रधानता है। उपन्यास की भूमिका में इंदिरा गोस्वामी यह स्पष्ट करती हैं कि पात्रों ने उसी भाषा का व्यवहार किया है जो तत्कालीन वैष्णव अमरंगा सत्रों में प्रचलित भाषा थी। उपन्यास की प्रमाणिकता बनाए रखने के लिए इंदिरा गोस्वामी ने पश्चिमी असम में व्यवहार की जाने वाली असमिया की विभिन्न बोलियों को समावेश किया है। इस संदर्भ में मंजीत बरुआ लिखते हैं, "What was important and different from the experiments from the previous periods in this regard was that the 'standard' and the Kamrupi language variant were complementary to each other, and the two together constituted the universe of the novel. In other words, both the language variants together constituted the 'Assamese'."[50]

इंदिरा गोस्वामी ने 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में स्त्री के मासिक धर्म को लेकर जो एक सामाजिक टैबू है, उसके विषय में विस्तार से लिखा है। मासिक धर्म के दौरान और विधवाओं के साथ होने वाला अछूत व्यवहार किस प्रकार भाषा को प्रभावित करते हैं, इसे उनके पाठ के माध्यम से समझा जा सकता है, "Widows and menstruating women are 'pollutants', unclean and their touch can pollute. How life events penetrate into stylistic conventions in a language, and how a language is moulded by the local specificities are shown by Goswami in the feelings of inferiority assigned to the widows and menstruating women."[51]

'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में इंदिरा गोस्वामी कई बार संकेतों के माध्यम से कहानी के त्रासद अंत का भी संकेत देती हैं। इंद्रनाथ गिरिबाला को प्रेरित करता है कि वह पुरानी असमिया पांडुलिपियों के संग्रहण तथा पठन में जर्मन शोधार्थी मार्क की सहायता करे। मार्क गिरिबाला से कहता है, "तो कल से मैं तुम्हारा छात्र हूँ। मैंने दक्षिणी तट से कई पांडुलिपियाँ इकट्ठी की हैं। ईश्वर ही जानता है मैं उन्हें प्रकाशन के लिए कब अंतिम रूप दे पाऊँगा। मुझे उम्मीद है तुम मेरी मदद करोगी।"[52] इसके उत्तर में गिरिबाला कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देती। यहाँ उल्लू की ध्वनि के माध्यम से यह इंगित किया जा रहा है कि मार्क और गिरिबाला की इस निर्दोष मित्रता की परिणिति गिरिबाला के आत्मदाह में होगी। मूल असमिया उपन्यास से उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

"गिरिबालाई कोनो उत्तर निदिल। नादर पारर मो-डिमरु जोपात परि एटि फेचूलूका चराए उरुलि दि उठिल।

अधिकार महाप्रभु खरम थोवा कोठार परा एखोज दूखोजके बाहिरले उलाई आहिल।"[53]

(गिरिबाला ने कोई जवाब नहीं दिया। कुऐं के निकट अंजीर के पेड़ से एक उल्लू की केवल अजीब-सी आवाज आई-उलू-लू -लू ..। फिर उन्हें खड़ाऊँ कक्ष से गोसाइन के आने की पदचाप सुनाई दी।)

इंदिरा गोस्वामी ने गिरिबाला के मौन को ध्वनियों के माध्यम से भाषिक अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। पशु-पक्षियों द्वारा इस तरह संकेत देने के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं। यथा इन्द्रनाथ का प्रिय हाथी जगन्नाथ पागल हो जाता है। सत्राधिकार की प्रतिष्ठा के पर्याय विशाल नक्काशीदार हौदे को हाथी की पीठ पर बाँधने के लिए लगाई जाने वाली कीलों से हाथी को भयानक पीड़ा होती है। इंद्रनाथ को उसकी चिंघाण सुनाई पड़ती है। यह चिंघाड़ वास्तव में सत्राधिकार परिवार पर भविष्य में आने वाली मुसीबतों का संकेत देती है।

“आटाह!!

हए हए, एई आटाह माटिया पर्वतर परा आहिछे। जेन सहस्त्र शंखई समस्वरे निनाद करि उठिछे!

नाई नाई, एया सहस्त्र शंखर निनाद नहय, एया एक हिंस्र गर्जन।

एया मेघर गर्जन आरू बाँस भडार शब्दई एकाकार ई एक भयंकर बातावर्नर सृष्टि करिछे!”[54]

(“इस आवाज में क्रोध ही नहीं था, बल्कि चुनौती भी थी और साथ-साथ बढ़ते विनाश की सूचना थी। उसे बाँसों का रौंदा जाना और कुचला जाना साफ़ सुन पड़ रहा था।”[55])

अनन्या हिलोईदरी युगबंदिता अपने एक लेख में लिखती हैं कि नीलकंठी ब्रज की सौदामिनी, दक्षिणी कामरूप की गाथा की गिरिबाला, तथा थेंगफाखरी तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल की थेंगफाखरी ये तीन स्त्री पात्र ऐसे हैं जिन्होंने स्वयं के लिए kristevian semiotic chora रचा है अर्थात फैलोसेंट्रिक प्रतीकों के यथार्थ से बाहर अपने लिए स्थान बनाना। थेंगफाखरी उन सीमाओं का अतिक्रमण करती है जिसके भीतर सौदामिनी और गिरिबाला को क्रमशः आत्महत्या और आत्मदाह का मार्ग चुनना पड़ा था। इस तरह थेंगफाखरी सिम्बालिक का पूरी तरह से अतिक्रमण कर पाती है। इसी प्रकार उपन्यास ‘मामरे धरा तारोवाल’ में नारायणी द्वारा स्त्री लोलुप साहब की हत्या के दृश्य में भाषा के माध्यम से इंदिरा गोस्वामी सिमियोटिक कोरा रचती हैं, यथा-

“नारायणीये अग्नि-पुत्तलिकार रूप धारण करिले....

अग्नि पुत्तलिकार चूलि खुलि परिल। कँकालत जि सामान्य बस्त्र आछिल सेईखिनिओ माटित सरि परिल।

ताई लरि गे शिबू धासलार हाथत परा कुठारखन काढ़ि ल’ले। आरू अग्नि पुत्तलिकाई कुम्भकरनेर दरे शुई थका उलंग चाहाबटिर मूरत एटि प्रचंड घाप बहुराई दिले।

खून....तेजर नदी....।....

लिचू लेंगरा जेन बलिजा हे ग’ल।.... सि लेकेचिजाई लेकेचिजाई गे नारायनीर गात धरि जोकारिबले धरिले।

“किजे मारिलि? सि तोक दूखन रुटी दिया नाछिल?”

हाथत तेजेरे राँगलि कुठार, उन्मुक्त चूलि। एकेबारेई नांगठ देह!!

भयंकर! भयंकर रूप!!”[56]

(नारायणी अग्निपुतली का रूप धारण कर लेती है। शिबू धासला के हाथ से कुल्हाड़ी ले कर कुंभकरण की तरह सोये साहब पर जोर से प्रहार करती है। लीछु लंगड़ा बोलता है कि साहब के यहाँ से उसे दो वक्त की रोटी मिल रही थी। नारायणी को उसे नहीं मारना चाहिए था। परंतु हाथ में कुल्हाड़ी, खुले बाल और नग्न शरीर में नारायणी एक भयंकर रूप ले चुकी थी।)

इस संदर्भ में सबरीन अहमद लिखती हैं, “Her writing shows how language can both oppress and librate women in the spurning wheel of a patriarchal tradition that needs constant critical engagement and redefinition.”[57]

रतनोत्तमा दास आलेख 'Blood That Is Shed In Indira Goswami's Writing' में लिखती हैं कि इंदिरा गोस्वामी के फिक्शन में रक्त का महत्वपूर्ण स्थान है। "Blood plays a keyrole in Goswami's fictional writing, especially animal blood."[58]

अपने लेखन में वह रक्त के लिए विभिन्न असामान्य रूपकों का प्रयोग करती हैं, यथा उपन्यास 'थेंगफाखरी तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' में सूर्यास्त का वर्णन कुछ इस प्रकार वर्णित करती हैं-

"तेतियाई एई गर्भवती नारीए शरीरर बस्त्र निर्लज्जभाबे येन आँचराई पेलाए..."

"नदीखन जेन गर्भवती हेइछे।... एई नदीये एखन रक्तबस्त्र धारण करिछे। "

(सूर्यास्त की लालिमा के नदी पर ऐसी छाई हुई थी, मानो ब्रह्मपुत्र ने अपने शरीर के चारों ओर रक्तरंजित कपड़े को लपेट लिया हो।)

रतनोत्तमा दास लिखती हैं कि उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में इंदिरा गोस्वामी ने नौ रसों में से दो रसों मुख्यतः वीभत्स रस तथा भयानक रस का प्रयोग किया है। उपन्यास से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

"तुरंत बलि चढ़ाए गए सफेद बकरे की तरह थरथराता हुआ पड़ा है ब्रह्मपुत्र नद- वहाँ पूर्व दिशा में धीरे-धीरे रोशनी बढ़ने लगी है, जैसे बलिवाले बकरे की चमड़ी उधेड़ने के बाद खून से लथपथ लाल मानस बाहर निकल आया हो। हाँ-आकाश की चमड़ी किसी ने उधेड़ दी है। लाल खून के धब्बे आसमान में बिखर गए।"[59]

बलिप्रथा को बंद करने का आह्वान करते हुए जटाधारी कहता है, "माँ, माँ, माँ!! तुम रक्तवस्त्र त्याग दो माँ! तुम रक्तवस्त्र फाड़ डालो। सारे भक्त एक साथ चिल्ला उठे, माँ, माँ तुम रक्तवस्त्र त्यागकर फूल के वस्त्र पहनो।"[60]

रतनोत्तमा आगे लिखती हैं, "Perhaps, Goswami is the only Assamese author who describes 'blood' in such a vivid fashion that the colour, the flow, the amount and

the putrid smell of it stay with us thus making her creative priocess a blood-coated endeavour to be probed further."[61]

इंदिरा गोस्वामी की भाषा में प्रकृति के उपादानों के लिए बड़े वीभत्स और अज़ीब साम्य आते हैं. प्रायः महिला लेखन इस प्रकार के बिंबों तथा रूपकों का प्रयोग नहीं किया जाता है। इस संबंध में इंदिरा गोस्वामी अपने एक साक्षात्कार में कहती हैं, "प्रकृति भाषा का एक बड़ा उपादान है. अपनी संवेदना और शब्द को शक्ति देने के लेखक प्रकृति को लेकर आता है। मैं तो बचपन से ही 'डिप्रेशन' में रहती थी. पिता को इतना चाहती थी कि हरदम उनकी मृत्यु का ख़याल आता था। डर ऐसा कि उनसे पहले ख़ुद मर जाना चाहती थी। आख़िर पिता एक दिन चले ही गए। पिता के जीवित रहते, मेरे विवाह के लिए कुछ बड़े अच्छे प्रस्ताव आए थे, लेकिन जैसे ही उनकी मृत्यु हुई, सबने मुँह फेर लिया। माँ ने कई जगहों पर अच्छे लड़के देख कर बात चलाई थी, मगर हर प्रयास विफल रहा। ज्योतिषी भी कुछ ऐसे ही थे. नवग्रह मंदिर के एक पंडित ने तो मेरे सामने ही माँ को कह दिया था, 'इस लड़की की शादी करने से बेहतर है इसके दो टुकड़े करके नदी में फेंक दो। ' हालाँकि, बाद में उसी ज्योतिषी ने मुझे काफ़ी उत्साहित किया और मुझमें अध्यवसाय की ज्योति देखी। मेरे पति माधवन रायसम की जब जीप-दुर्घटना में मृत्यु हुई, तब मेरी शादी के डेढ़ वर्ष भी नहीं हुए थे। उनके साथ बिताए वे थोड़े पल मेरे स्वर्णकाल थे. उसके बाद तो मैं आकाश की ओर देख तक नहीं पाती थी। जब कभी देखती तो बादल मुझे कोढ़ी के चकत्ते जैसे दिखते। आकाश में जगह-जगह मुझे धब्बे दिखाई पड़ते, बलात्कार के बाद छोड़ दी गई स्त्री के कपड़े पर फैले ख़ून के धब्बे सदृश। कभी मुझे लगता आकाश हमारे सिर पर उसी तरह लटका है जिस तरह कसाई के यहाँ कटे हुए बकरे का लोथ लटका होता है। सोचती, यह वही आकाश और उसके रंग हैं, जिसे माधवन के साथ राजस्थान और कश्मीर के सुदूर इलाक़ों में रहते घंटों निहारा करती थी।"[62]

इंदिरा गोस्वामी ने भाषा में उपमेय, उपमानों तथा रूपकों के संदर्भ में रचनात्मक प्रयोग किए हैं-

'दक्षिणी कामरूप की गाथा' से आकाश को चित्रित करने के कुछ उदाहरण निम्नवत हैं-

“लाहे लाहे पूबफालर आकाशखने पुरनि पाटर चादरर बरन ल’ले।”

“पूर्वी आकाश का रंग अब धीरे-धीरे पुराने रेशम के समान हो रहा था।”[63]

“पूवार सूर्यई बाँसर जोपोहाबोरत जेन बगाबलेहे आरंभ करिछिल। बाँसर जोपोहाबोरत पूवार कुँवलिए तेतियाउ कापोर एखनहे जेन पिन्हाई आछिल। सेई कापोर अवश्य फटा कापोरर दरेहे आछिल। कारण कोनो कोनो ठाई ब’द परि एकेबारे भास्वर ई परिछिल। कोनो कोनो ठाई एकेबारेई अंधकार ई आछिल।”[64]

“बिजुली के बाँसों की ओट से सूरज निकल रहा था। सुबह की ठंडी और तेज बयार से बाँसों के लंबे और नुकीले पत्ते साँय-साँय कर रहे थे। सूरज की किरणों ने बाँसों के झुरमुट के बीच उजाले और अँधेरे का जाल बुन दिया था, जैसे कि वहाँ कोई चीथड़ा अटा हुआ हो।”[65]

किसी इमारत का वर्णन करने के लिए वे जीव-जंतुओं के उपमानों का प्रयोग करती हैं। अनाज के गोदाम को बैठे हुए बूढ़े हाथी की उपमा दी गई है जो सर्वथा नवीन है।

“गोसाँईर हाऊलिर मुखे मुखे जिटो टिनर घर दिने दिने परिष्कार आरू नदन-वदन हे आहिर धरिछे सेईटोवेइ हेछे हरि महाजनर घर। महाजनर बारीर पाछफाले आजिकालि एटा ‘भँड़ाल’ देखा गेछे। गोबर-माटिर निकाके लेपि-मचि थोवा चोतालखन एतिया ‘काज’त मरा छागलिर शुकाब दिया छालर दरे परि आछे। आरू सेई पूरना आहल-बहल भँड़ालटो! जेन बोका-पानी लेटि ले बहि आछे एटा बूढ़ा हाथी।”[66]

(“गोसाईं की हवेली के सामने एक दूसरा घर था जो चमचमाते सिक्के की तरह चमक रहा था। उसकी छत की टीन की चादरें इस तरह उद्भासित हो रही थीं जैसे उन पर चाँदी का लेप किया गया हो। यह हरि महाजन का घर था। इस घर के पिछवाड़े में अनाज का गोदाम था जो अनाज से लबालब भरा था। सहन बड़ा साफ-सुथरा था, और उसमें गए के ताजा गोबर से लिपाई की हुई थी। ऐसे लगता था जैसे किसी ने बकरी की कई खालें सूखने के लिए साथ-साथ बिछाई हों, और उनका सफेद हिस्सा ऊपर किया हुआ

हो। दूर से अनाज का गोदाम एक बूढ़े हाथी की तरह दिखता था, वह हाथी जो कीचड़ से लथपथ अपने को घुमाव देकर चुपचाप बैठा हो।"[67])

"जगलिया के किनारे चंद्रमा की इस रोशनी में रेत के ढूहे सफेद भेड़ों के झुंड के समान दिख रहे थे।"[68]

"डूबते हुए सूरज को देखकर ऐसे लगता था मानो वह हाथियों के बाड़े में गिर पड़ा हो और उसी दिशा से चौधरी अपने सफेद घोड़े पर सवार, धुऐं और धूल से अटी पड़ी संध्या को गर्जना के साथ चीरता, देखा जा सकता था।"[69]

'नीलकंठी ब्रज' में यमुना के लिए स्त्री केंद्रित बिंबों का प्रयोग किया गया है-

"अगहन-पूस के महीनों में जब यमुना चीरहरण घाट से दूर हट जाती है, तब यह रेत बुढ़िया के श्वेत-केशों की तरह फैली दिखती है।"[70]

उपन्यास 'अहिरण' में इंदिरा गोस्वामी ने छत्तीसगढ़ की अहिरण नदी पर पुल निर्माण के कार्य में लगी कन्स्ट्रक्शन कंपनी तथा श्रमिक जीवन में प्रचलित शब्दावलियों का प्रयोग करने के साथ ही रूपकों का भी प्रयोग किया है। 'अहिरण' नदी के सौन्दर्य का वर्णन करती कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"जोनाकर एक रहस्यमय पोहरे अहिरनर दूजोपारक बारबनितार हाँहिर दरे छलनामयी करि राखिछिल। आरू एई ठाई, जि ठाईरपरा अहिरने हसदेव नदिर बुकुरपरा फालरि काटि दक्षिणमुवा हे गति करिछे....एई ठाईर शोभाक आजि एई मुहूर्तत ठिक पार्थिव जेन लगा नाई। जामू, सेब आरू शालर हाबिर सेई रहस्यमय नीलाभ ब, बगलीर पाथिर दरे शुभ्र हे परि थका बालि आरू अहिरनर एई पानी एक मुहूर्तत एकबारेई अपार्थिव हे परिछे।"[71]

("रहस्यमय चाँदनी में सने हुए अहिरण के किनारे दो नृत्यांगनाओं की हँसी की तरह छलिया बने हुए थे। और यह जगह जहाँ अहिरण हसदेव से अलग हो दक्षिण की ओर जाती है, इसकी शोभा आज इस क्षण

अलौकिक लग रही थी। अमरूद और सरई के पेड़ों का गहरा नीलापन, हँस के पंखों की तरह फैली सफेद बालू और साथ में अहिरण का पानी एक क्षण किसी दूसरे ही लोक के लग रहे थे।"[72])

".....अहिरनर बालिर उपरत पूवार सोनाली र'द सिंचरति हे परिछे। विंध्यारपरा अहा एजाक बनरीजा हाँहे अहिरनर केंकूरि एटार उचरत कलरव करि थका सुना गेछे।....माछुवेहँते दूमाह आगतेई एरि थे योवा नाउबोर डेबुरि हे परि आछे-जेन एकोटा बगिया काछे खोला।"[73]

("नई सुबह की सुनहरी किरणें अहिरण के बालू पर फैल गई थीं। एक जंगली हंसों का झुंड जो विंध्या से उड़कर आया था, नदी की बाँक पर आवाज दे रहा था। दो माह पहले मछुओं द्वारा छोड़ी गई नावें उलटी पड़ी थीं जो कछुओं के खोल की तरह दिखती थीं।"[74])

'अहिरण' की भाषा शैली की विशेषता है कि पात्रों के मध्य चुप्पी, ठहराव तथा असंबद्ध शब्दों के द्वारा एक नई तरह की भाषा शैली का प्रयोग किया गया है जो इसे स्त्री भाषा से जोड़ता है, "In 'Ahiran', we came across this female imprint, a feminine language that is marked by silences, gaps and disjointed words."[75]

इंदिरा गोस्वामी ने अपने उपन्यासों में लोकगीत और लोककथाओं के माध्यम से पूर्वोत्तर के ग्रामीण समाज को प्रस्तुत किया है। 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में असम के कामरूप जिले के वैष्णव सत्र के उन दिनों की कहानी कहता है जब सत्राधिकारों के विलासपूर्ण जीवन के कारण सत्र की प्रतिष्ठा धीरे-धीरे धूमिल पड़ती जा थी। सत्राधिकार के पुत्र इंद्रनाथ का संतुलन जगलिया नदी के किनारे के कीचड़ में बिगड़ जाता है तो गाँव की युवतियाँ लोकगीतों के माध्यम से उससे चुहलबाजी करती हैं,

"घराके धुवाला पँचिछ कलह पानी,/ घरारे पीठित दिला नारायणी तेल।/ घरारे मुखत दिला काटा लागम जरी!/ घरारे काने दिला गेंके फूलर माला/ बिचमिल्ला बूलि जामाद घराते उठिला।।"[76]

("दुल्हन का घोड़ा/ सजा है दुल्हन का घोड़ा पच्चीस घड़ों के पानी से धुला है दुल्हन का घोड़ा/ नारायणी का शुद्ध तेल मले पीठ पर दुल्हन का घोड़ा/ लगाम लगाए है, माथा सजाए है/ कानों में पहने है गेंदे का/

हार दुल्हन का घोड़ा/ बिस्मिल्ला! कहती है दुल्हनधप से जा बैठी उसकी पीठ पर/ धम से गिरा है दुल्हन का घोड़ा"[77])

'थेंगफाखरी तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' में पूर्वोत्तर के बोडो समाज के लोक गीतों की झलक मिलती है। अकेलेपन को मिटाने और खुद को खुश रखने के लिए थेंगफाखरी के कारिंदे बिजनी लौटते समय सुनसान और निर्जन रास्ते पर लोक गीत गुनगुनाते हैं,

"आई नाकांदिबा-नाकांदिबा,/ तोमार बिया बोडो डेकार/ बाहिरे आनत दिया नाई।/ गारो डेकाको दिया नाई/ नेपाली डेकाको दिया नाई/ नाकांदिबा नाकांदिबा आई / मोर छोवालीर राजकुमारीर दरे / रूप। तोरा गाछर पातर दरे दीघल/ मुख, जांवाई पातर दरे मोर / छोवाली चाफचीकून / अ' मोर छोवाली राजकुमारी। / तोरार पातर दरे मुख..."[78]

("मेरी प्रिय, रोना मत, रोना मत,/ हम तुम्हारी शादी सिर्फ/ एक बोडो से ही करेंगे,/ न किसी गारो से,/ न किसी नेपाली से,/ रोना मत, रोना मत, मेरी प्रिय/ मेरी बेटी ऐसी सुंदर, जैसे एक शहजादी,/ चेहरा गोल गोल और लंबा जैसे पेड़ों की पाती,/ सुंदर है, निर्मल है, जैसे दामाद जी का लाया सिल्क,/ ओ मेरी बेटी, मेरी शहजादी,/ चेहरा उसका इतना सुंदर जैसे तोर वृक्षों की पाती)

उपरोक्त लोकगीत के माध्यम से बोडो समाज में स्त्री की स्थिति का भी परिचय मिल रहा है। विवाह में एक लड़की की सहमति कितनी आवश्यक होती है, इस बात पर बल दिया गया है।

'थेंगफाखरीर तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' में लोकगीतों के साथ ही लोकोक्तियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास में प्रयुक्त कुछ लोकोक्तियाँ निमन्वत हैं-

थेंगफाखरी के चाचा मुसहरी थेंगफाखरी से कहते हैं, "आनहाते ब्रिटनी महिलाहँत, - जान नए, देशेर उत्तर पिनर मानूहे कए सिहँत अप्सरा! गाछत लगा कनीरपरा सिहँतर जन्म। चाहाबहँते सिहँतर हात आरू कँकालत धरि थाके, जाते सिहँत उरा मारि आकाशले जाब नोवारे!"[79]

("ये अंग्रेज महिलाएं, तुम्हें नहीं पता? उत्तर के लोग कहते हैं कि ये परियाँ हैं जो पेड़ों पर अलग तरह के अंडों से जन्मी हैं। साहिब लोग उन्हें कमर से पकड़ते हैं कि कहीं वे आसमान में वापस न उड़ जाएं।")

ब्रम्हपुत्र की घाटी के ग्रामीण इलाकों रानी विक्टोरिया के संबंध में प्रचलित लोककथा का जिक्र पद्मनाथ गोहेन बरुआ ने अपनी आत्मकथा में भी किया है। 'माय रेड रिवर' शीर्षक से लिखी कविता में भी इंदिरा गोस्वामी ने इस किवदंती के विषय में लिखा है। किवदंती इस प्रकार है कि सुबह की किरणों के साथ रानी विक्टोरिया का जन्म होता है। दिन में वह एक नवयुवती बनती हैं और रात में उनकी मृत्यु हो जाती है और सुबह वह पुनः जन्म लेती हैं। इन किवदंतियों के माध्यम से इंदिरा गोस्वामी पूर्वोत्तर में प्रचलित लोकविश्वासों पर भी प्रकाश डालती हैं।

'नीलकंठी ब्रज' तथा 'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठ' के लेखन में इंदिरा गोस्वामी ने आत्मकथा शैली का प्रयोग किया है। अपनी आत्मकथा 'आधा लेखा दस्ताबेज' में उन्होंने व्यक्तिगत स्वीकरोक्ति,आत्मावलोकन तथा आत्ममूल्यन पर ज्यादा ध्यान दिया है। उनके स्त्री पात्रों सौदामिनी, गिरिबाला में भी यह देखा जा सकता है। "Rationality is a guiding force in all life writings, so is the dynamism of the contents…This is because in every life writing 'truth' is multi-layered and the act of narration political, value-laden. As a recreation of the self, Goswami's autobiography lays more emphasis on confessions."[80] इंदिरा गोस्वामी की आत्मकथा 'आधा लेखा दस्तावेज' के दूसरे भाग की भाषा में यह देखा जा सकता है कि वह किस प्रकार भाषा के लैंगिक विभेद की अवधारणा को खंडित करती है तथा साथ में ही स्त्री की देह और यौनिकता पर लगाई गई पितृसत्तात्मक बंदिशों को भी खंडित करती है। इस विषय में नम्रता पाठक और दिब्यज्योति शर्मा का कहना है, "Not only there is an attempt at deconstructing the gender differences in language, but her language is also an opposition to patriarchal strictures on a women's body and her sexuality."[81]

स्त्री आंदोलन की दूसरी लहर की स्त्रीवादी केट मिलेट मानती हैं कि आत्मकथा के माध्यम से स्त्रियाँ अपने जीवन-संघर्षों की यथार्थ अभिव्यक्ति कर सकती हैं। इंदिरा गोस्वामी ने अपने जीवन के अवसादपूर्ण क्षणों का दस्तावेजीकरण आत्मकथा 'आधा लेखार दस्ताबेज' के माध्यम से किया है 'Encyclopaidia of Feminist Literary Theory' के अनुसार हाल के दशकों में स्त्रीवादियों द्वारा इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि प्रायः स्त्री आत्मकथाएं, पुरुष आत्मकथाओं से बहुत भिन्न होती हैं, इंदिरा गोस्वामी की आत्मकथा द्वारा उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि होती है। "Kate millet cites the tradition of women's autobiography as progressive articulation of the self which in the case of a depressed woman represents the injured self as seen in Indira Goswami's 'Adha Lekha Dostabej'."[82]

इंदिरा गोस्वामी की लेखन शैली भिन्न है क्योंकि प्रायः उनके सभी पात्रों में उनके स्वयं के व्यक्तित्व का प्रभाव दिखाई पड़ता है। जब कि रोचक तथ्य यह है कि इंदिरा गोस्वामी ने मात्र एक उपन्यास 'तेज आरू धूलि धूसरित पृष्ठो' को ही फर्स्ट-पर्सन के दृष्टिकोण से लिखा है इस संबंध में दिब्यज्योति शर्मा लिखते हैं कि, "In her writing Goswami the person is completely involved in guiding Goswami the writer. It is interesting how Goswami has rarely written in first-person point of view, yet all the points of view of her characters are influenced by Goswami the person."[83]

इंदिरा गोस्वामी की शैली में एक और विशिष्टता दिखाई पड़ती है। एक फ्रेंच शब्द है- 'Flaneur' ("From the French verb 'flaner', the 'flaneur', or 'one who wanders aimlessly'"[84]) जिसे हम स्ट्रोलर भी कह सकते हैं, ऐसा व्यक्ति जो किसी शहर में घूमते हुए उस शहर से जुड़ी हर डीटेल को लिपिबद्ध करता है। "The flaneur understands the city as few of its inhabitants do, for he has memorised it with his feet."[85] जैसा कि परिभाषा से स्पष्ट है कि flaneur कोई पुरुष ही हो सकता है। परंतु लॉरेन एल्किन का मानना है कि उन्नीसवीं सदी के सामाजिक बंधनों के कारण

ऐसी स्त्रियों का इतिहास में उल्लेख नहीं मिलता है "Ofcourse the reason the flaneuse was discounted from histories of city walking had to do with the social conditions of women in the nineteenth century, when our ideas about the flaneur were codified."[86] लॉरेन आगे लिखती हैं कि वर्जीनिया वूल्फ़ ने 1927 में प्रकाशित निबंध 'स्ट्रीट हन्टिंग' में शहर के उन हिस्सों की परिकल्पना की है जो लैंगिक विभेद से परे हों। "Virginia Woolf's 1927 essay 'Street Hunting' is an attempt to claim an ungendered place in the city by walking through it. Out in the street, we become observing entities, 'part of that vast republican army of anonymous trampers'."[87] एक flaneuse स्थानों का भ्रमण करते हुए जहाँ स्त्रियों का स्थान सुनिश्चित करती है वहीं इस पूरे संदर्भ में स्त्री दृष्टि से हस्तक्षेप भी करती है। "A female flânerie- a flaneuserie- not only changes the way we move through space, but intervenes in the organization of space itself."[88]

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों 'नीलकंठी ब्रज' में वृंदावन का चित्रण, 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में असम के वैष्णव सत्रों का चित्रण तथा 'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठो' में दिल्ली का चित्रण flaneuse की शैली के आधार पर किया गया है। जहाँ उन्होंने इन शहरों के दोनों पक्षों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में मनबिन्दर कौर अपने आलेख 'परसेप्शन ऑफ प्लेसेस एण्ड लोकेशंस इन इंदिरा गोस्वामीज सेलेक्टेड नॉवेल्स' में लिखती हैं "Goswami's flaneuse, captures the joyful images along with the ugly world of deceit, debauchery, violence and murder."[89] लॉरेन एलकिन लिखती हैं कि एक flaneuse ऐसे स्थानों का भ्रमण करती है जहाँ उसे नहीं होना चाहिए। इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठो' की नायिका अपनी डायरी के साथ दिल्ली शहर के उन तमाम स्थानों को अपने पैरों से नापती है जहाँ एक स्त्री का जाना अच्छा नहीं समझा जाता, ऑटो ड्राइवर संतोष सिंह को ढूँढ़ते हुए वह तिब्बती शराब पीने की अँधेरी कोठरियों तक पँहुच जाती हैं, वेश्याओं पर कुछ प्रामाणिक लिखने की दृढ़ इच्छा से वह सबके मना करने पर भी दिल्ली के जी. बी

रोड के रेड लाइट एरिया में जाती हैं। इस संदर्भ में लॉरेन एलकिन की लिखी निम्न पंक्तियों के आधार पर इंदिरा गोस्वामी को flaneuse कहा जा सकता है, "She voyeges out, and goes where she's not supposed to; she forces us to confront the ways in which words like home and belonging are used against women. She is a determined, resourceful individual keenly attuned to the creative potential of the city, and the liberating possibilities of a good walk."[90]

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने के उपरांत कुशाल दत्ता को दिए गए साक्षात्कार में लेखन की विशिष्ट शैली के प्रश्न पर इंदिरा गोस्वामी कहती हैं कि उन्होंने कभी भी लेखन की चली आ रही परिपाटी का अनुसरण नहीं किया वरन उनके लेखन से स्वतः ही एक नई लेखन शैली बनती चली गई, "From the creative point of view, I differ completely from others, especially from Indian writers…I create my own technique. I never bother about any '-isms'- such as surrealism, magic realism, existentialism- I never get driven by these. The way I create literature, likewise, a new writing technique also gets created automatically."

इंदिरा गोस्वामी जिस दृष्टि से पाठ रचती हैं वह स्थानीय होने के साथ ही वैश्विक संदर्भ से भी जुड़ा हुआ है। वे जिस तरह से वर्ग, शक्ति, जाति तथा लिंग आधारित शोषण को लिपिबद्ध करती हैं उससे उनका लेखन सिमियाटिक की विशेषताओं से युक्त दिखाई पड़ता है। इस संबंध में नम्रता पाठक लिखती हैं, "Goswami's texts are intersections of the local and global, the popular and the canonical. The writer's penchant for transcending boundaries gives a new contour and shape to the social cultural domains in her texts. That every character is a representative of the society, that the context comes alive in every evocation of class struggle, power play, caste discrimination and gendered narratives add an interesting semantic load to her texts." दिब्यज्योति शर्मा अपने आलेख 'Finding What

May Lost-Translating Indira Goswami' में लिखते हैं कि इंदिरा गोस्वामी को भाषा पर बहुत अच्छी पकड़ के लिए नहीं बल्कि उनके आख्यानों की जटिलताओं तथा कहानी सुनाने की अलग शैली के लिए पढ़ा जाता है, यह बात अपने आप में एक किस्म का विरोधाभास पैदा करती है क्योंकि इंदिरा गोस्वामी अपने पीढ़ी में सबसे प्रयोगशील कथाकार मानी जाती हैं, "There were other authors like Saurabh Kumar Chalia, who were discussed for their innovative use of language, but not Goswami, who was mostly celebrated for her unique themes. This is some what odd because Goswami remains one of the most inventive writers of her generation."[91] इंदिरा गोस्वामी की भाषा के संबंध में नम्रता पाठक और दिब्यज्योति शर्मा लिखते हैं, "Goswami's articulation of many languages of exclusion can be seen in her exclusive treatment of gender, class and caste. Her special emphasis on the narratives of the minorities or the 'others' stem from her thoughtful engagements with the particularities of the region, location or place."[92]

इंदिरा गोस्वामी ने स्त्री दृष्टि के माध्यम से लेखन की स्त्री परंपरा को समृद्ध किया है। अपने लेखन की विशिष्ट शैली के माध्यम से वह लेखन की पुरुष परंपरा का सामना करते हुए उसे कमजोर भी करती हैं। इस संबंध में सबरीन अहमद लिखती हैं, "Indira Goswami is one of those women writers who confront and undermine the male tradition by producing works with encoded messages, works with surface designs that conceal deeper and more subversive messages in her critique of the patriarchal norms of the society as a part of her lived experience."[93]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इंदिरा गोस्वामी प्रयोगशीलता के माध्यम से एक भिन्न तथा विशिष्ट भाषा शैली रचती हैं।

निष्कर्ष-

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में भाषा और शिल्प के तुलनात्मक अध्ययन से निम्नलिखित तथ्य उभर कर आते हैं।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी' तथा 'सूरजमुखी अँधेरे की' की भाषा स्त्री संवेदनाओं, तथा इच्छाओं को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ है। इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों 'नीलकंठी ब्रज', 'दाँताल हाथिर उने खोवा हौदा' के स्त्री पात्रों द्वारा धर्म की कुरीतियों और आडंबरों का विरोध जिस भाषा में किया गया है वह स्त्री संवेदनाओं तथा भावों को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह से सक्षम है।

आत्मकथात्मक शैली विमर्शों के लेखन की शैली मानी जाती है। एलिजाबेथ विल्सन स्त्रीविमर्श की आधारभूत विधा के रूप में आत्मकथा को रेखांकित करते हुए लिखती हैं, "If there is a typical literary form of feminism it is the fragmented, intimate form of confessional, personal, autobiography, the diary, 'telling it like it was'."[94] कृष्णा सोबती के उपन्यासों 'ए लड़की', 'समय सरगम' तथा 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' को आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इंदिरा गोस्वामी का उपन्यास 'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठ' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त उपन्यास 'नीलकंठी ब्रज' की नायिका विधवा सौदामिनी का चरित्र-चित्रण उन्होंने अपने व्यक्तित्व के आधार पर किया है। दोनों ही रचनाकारों ने आत्मकथा शैली का सीधा प्रयोग न कर अपने अनुभवों तथा संस्मरणों को फिक्शन में लिखने का प्रयास किया है।

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी दोनों ने ही अपने अपने प्रांतों के लोक साहित्य तथा लोक गीतों के माध्यम से भारतीय साहित्य की विविधता को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन द्रष्टव्य है- "भारतीय हृदय का सामान्य रूप पहचानने के लिए पुराने परिचित ग्राम गीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है; केवल पंडितों द्वारा प्रवर्तित काव्य परंपरा

का अनुशीलन ही अहम नहीं है।"[95] कृष्णा सोबती के उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' तथा 'जिंदगीनामा' में पंजाब प्रांत के लोकगीतों, लोककथाओं मुहावरेदानी वाली भाषा का प्रयोग किया गया है। इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में कामरूप जिले में प्रचलित लोकगीतों और मुहावरों का प्रयोग किया गया है। उपन्यास 'थेंगफाखरीर तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' में निचले असम के जनजातीय गीतों के साथ ही उस क्षेत्र में प्रचलित लोककथाओं को भी जोड़ा गया है।

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी दोनों ने ही अपने उपन्यासों के माध्यम से हिंदी साहित्य और असमिया साहित्य में बोलियों, उपबोलियों का सफल प्रयोग किया है। कृष्णा सोबती ने 'डार से बिछुड़ी' 'जिंदगीनामा', 'मित्रो मरजानी' तथा 'चन्ना' के माध्यम से लेखन में पंजाब प्रांत की बोली का समावेश किया है। 'मित्रो मरजानी' में तीन प्रदेशों राजस्थान, दिल्ली तथा पंजाब की बोलियों का समावेश किया गया है। इंदिरा गोस्वामी ने 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में असम के कामरूप जिले में बोली जाने वाली कामरूपी बोली का प्रयोग किया है। हिंदी पट्टी-क्षेत्र पर आधारित उपन्यासों 'नीलकंठी ब्रज', 'अहिरण' तथा 'मामरे धरा तारोवाल' में हिंदी की बोलियों के शब्दों का समावेश किया गया है। उपन्यास 'थेंगफाखरीर तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' में निचले असम के जनजातीय क्षेत्र में प्रचलित बोली का व्यवहार किया गया है।

किसी भी कथा में पात्रों का भाषा-संस्कार उनकी जातीय अस्मिता तथा वर्गीय पहचान के अनुरूप होना लेखन को प्रामाणिक बनाता है। कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में पात्रों और परिस्थितियों के अनुकूल संवाद का व्यवहार किया गया है। कृष्णा सोबती के ग्रामीण पृष्ठभूमि को केंद्र में रख कर लिखे गए उपन्यासों 'डार से बिछुड़ी' तथा 'जिंदगीनामा' में पात्रों द्वारा जिस भाषा का व्यवहार किया गया है वह 'दिलोंदानिश', 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'ए लड़की' तथा 'समय सरगम' से बिल्कुल भिन्न है। 'चन्ना' ग्रामीण तथा शहरी संस्कृति के मेल पर आधारित उपन्यास है। उपन्यास की नायिका की भाषा गाँव के जमींदार शाह जी तथा शहर में पले-बढ़े पिता धर्मपाल की भाषा से भिन्न है। उपन्यास 'यारों का यार' में पात्रों का संवाद सरकारी कार्यालयों में हँसी-मजाक करते पात्रों के अनुरूप है। इंदिरा

गोस्वामी के श्रमिक जीवन पर आधारित उपन्यासों में तकनीकी शब्दावली पर आधारित भाषा का व्यवहार किया गया है। वर्कसाइट्स पर नियुक्त कर्मचारियों तथा श्रमिकों के संवादों में भाषा का अंतर स्पष्ट पता चलता है। 'नीलकंठी' ब्रज में विभिन्न प्रदेशों से आई विधवा राधेश्यामियों का भाषा संस्कार एक ही परिवेश में लंबे समय से साथ रहने के कारण एक ही है। 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में वैष्णव सत्रों में प्रचलित भाषा का व्यवहार किया गया है।

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी ने की भाषा शैली में रूपकों का विशेष महत्व है। कृष्णा सोबती जहाँ मोहक तथा सुंदर रूपकों का प्रयोग करती हैं वहीं इंदिरा गोस्वामी ने असामान्य रूपकों का प्रयोग किया है, यथा आसमान पर बादलों को कसाई के यहाँ टंगे माँस के लोथड़े कहना। रुपक के रूप में कामाख्या में होने वाले बलिविधान का विशद और वीभत्स वर्णन भी उनके लेखन में दिखाई देता है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' में पत्रात्मक शैली तथा उपन्यास 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' में संस्मरण-विधा का प्रयोग किया गया है। इंदिरा गोस्वामी के उपन्यास 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में सरकारी दस्तावेजों का प्रयोग किया गया है। उपन्यास 'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठ' डायरी-लेखन की शैली में लिखा गया है।

उपरोक्त बिंदुओं के आधार पर कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी के लेखन में भाषाई भिन्नता तो दिखाई पड़ती है परंतु दोनों साहित्यकारों की शैली में साम्य भी दिखाई पड़ता है। लेखक का निजी व्यक्तित्व भी लेखन में उसके पात्रों के माध्यम से परलक्षित होता है। कृष्णा सोबती के स्त्री पात्रों की भाषा हँसी-मजाक, जिंदादिली से भरी हुई है वहीं इंदिरा गोस्वामी के स्त्री पात्रों की भाषा गंभीर और दार्शनिक है। कृष्णा सोबती के लेखन की भाषा घटना प्रधान है तथा इंदिरा गोस्वामी के लेखन की भाषा तथ्य प्रधान है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती और इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में कथा को प्रवाहमान और रोचक बनाए रखने में उनकी भाषा शैली और शिल्प का महत्वपूर्ण योगदान है। इस दृष्टि से दोनों

साहित्यकारों कि भाषा शैली में साम्य दिखाई पड़ता है। कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी दोनों ही साहित्यकारों द्वारा साहित्यिक भाषा में उपभाषाओं और बोलियों का मेल किया गया है। पात्र विशेष और क्षेत्र विशेष के अनुरूप संवादों से युक्त रचनाएं जहां रचनात्मक प्रयोगशीलता को दर्शाती हैं वहीं कथ्य की प्रामाणिकता की भी पुष्टि करती हैं। आत्मकथा शैली विमर्शों के लेखन की शैली मानी जाती है। कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी दोनों ने ही आत्मकथा शैली में उपन्यासों की रचना की है। कृष्णा सोबती ने आंचलिक भाषा का उपन्यासों में सफल प्रयोग किया है तो इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों की भाषा में उत्तर पूर्वांचल क्षेत्र की प्रकृति की छाप अधिक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने उपन्यासों द्वारा कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी ने एक निजी भाषा शैली गढ़ी है।

संदर्भ सूची-

[1] सिंह, (प्रो.) दिलीप (2011), भाषा का संसार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 9

[2] इगलटन, मैंरी (संपा.) (1986), फेमिनिस्ट लिटरेरी थ्योरी, ब्लैकवेल, यूनाइटेड किंगडम, पृष्ठ-200

[3] प्रमिला, के. पी. (2015), स्त्री अध्ययन की बुनियाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-140

[4] सोबती, कृष्णा (2023), रचना का गर्भगृह, संकलन एवं संपादन: आर. चेतनक्रांति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 79

[5] सोबती, कृष्णा(2018), डार से बिछुड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका

[6] वही, पृष्ठ- 16

[7] वही, पृष्ठ- 32

[8] वही, पृष्ठ- 33

[9] वही, पृष्ठ- 17

[10] वही, पृष्ठ- 75

[11] यादव, राजेन्द्र (2021), आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 128

[12] सोबती, कृष्णा (2014), तिन पहाड़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-16

[13] वही, पृष्ठ-16

[14] वही, पृष्ठ- 28

[15] वही, पृष्ठ- 92

[16] सोबती, कृष्णा (2016), मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 19

[17] वही, पृष्ठ- 25

[18] सोबती, कृष्णा (2023), रचना का गर्भगृह, संकलन एवं संपादन: आर. चेतनक्रांति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 61

[19] सोबती, कृष्णा (1986), जिंदगीनामा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 16

[20] सोबती, कृष्णा (2018), दिलोदानिश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ- 7

[21] वही, पृष्ठ- 11

[22] सुकृता पॉल कुमार और रेखा सेठी(संपा.),(2022), कृष्णा सोबती: ए काउन्टर आर्काइव, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ-119

[23] सोबती, कृष्णा (2023), रचना का गर्भगृह, संकलन एवं संपादन: आर. चेतनक्रांति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-104

[24] सोबती, कृष्णा (2016), ए लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-58

[25] सोबती, कृष्णा (2008), समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-15

[26] वही, पृष्ठ-152

[27] वही, पृष्ठ-153

[28] सोबती, कृष्णा (2023), रचना का गर्भगृह, संकलन एवं संपादन: आर. चेतनक्रांति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 42

[29] सोबती, कृष्णा (2023), रचना का गर्भगृह, संकलन एवं संपादन: आर. चेतनक्रांति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 58

[30] सिक्सू, हेलेन (1976), द लाफ़ ऑफ द मेड्यूसा, शिकागो जर्नल, वॉल-1, http://www.jstor.org/stable/3173239 , पृष्ठ- 885

[31] वही, पृष्ठ-110

[32] पॉल, कुमार, सुकृता, सेठी, रेखा (संपा.) (2022), कृष्णा सोबती: ए काउन्टर आरकाईव, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क पृष्ठ-129

[33] सिंह, कुमार, राकेश (संपादक), सबद निरंतर, वर्ष-1, अंक-1, (जनवरी-मार्च 2021), पृष्ठ- (19-20)

[34] वही, पृष्ठ- 226

[35] सोबती, कृष्णा (2023), रचना का गर्भगृह, संकलन एवं संपादन: आर. चेतनक्रांति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-18

[36] राठी, गिरिधर (2021), कृष्णा सोबती की जीवनी: दूसरा जीवन, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 182

[37] पॉल, कुमार, सुकृता, सेठी, रेखा (संपा.) (2022), कृष्णा सोबती: ए काउन्टर आरकाईव, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ- 115

[38] बाजपेयी, अशोक, 'कृष्णा सोबती का दूसरा समय' संपादकीय 'हंस', अप्रैल 2019, पृ. सं.- 6

[39] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ- 279

[40] रायसम, गोस्वामी, मामोनी (2018), नीलकंठी ब्रज, चंद्र प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, पृष्ठ-122

[41] गोस्वामी, इंदिरा(2011), अहिरण, चंद्र प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, पृष्ठ-17

[42] गोस्वामी, इंदिरा (2015), अहिरण (हिंदी अनुवाद- बुद्धदेव चटर्जी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 21

[43] गोस्वामी, इंदिरा(2015), मामरे धरा तारोवाल, चंद्र प्रकाशन, गुवाहाटी, पृष्ठ-12

[44] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ- 76

[45] गोस्वामी, इंदिरा(2015), मामरे धरा तारोवाल, चंद्र प्रकाशन, गुवाहाटी, पृष्ठ-24

[46] वही, पृष्ठ-70

[47] वही, पृष्ठ-2

[48] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ- 279

[49] वही, पृष्ठ-281

[50] वही, पृष्ठ-16

[51] वही, भूमिका

[52] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 61

[53] गोस्वामी, इंदिरा (2022), दँताल हाथिर उएं खोवा हौदा, चंद्र प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, पृष्ठ- 83

[54] वही, पृष्ठ- 113

[55] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 85

[56] गोस्वामी, इंदिरा (2015), मामरे धरा तारोवाल, चंद्र प्रकाशन, गुवाहाटी, पृष्ठ-106

[57] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ-214

[58] वही, पृष्ठ- 231

[59] गोस्वामी, इंदिरा (2013), छिन्नमस्ता (हिंदी अनुवाद- पापोरी गोस्वामी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 70

[60] वही, पृष्ठ- 64

[61] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ-234

[62] समालोचन पर अर्पण कुमार का इंदिरा गोस्वामी से साक्षात्कार, https://samalochan.com/इंदिरा-गोस्वामी-अर्पण-कु/

[63] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 16

[64] गोस्वामी, इंदिरा (2022), दँताल हाथिर उएं खोवा हौदा, चंद्र प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, पृष्ठ- 32

[65] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 17

[66] गोस्वामी, इंदिरा (2022), दँताल हाथिर उएं खोवा हौदा, चंद्र प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, पृष्ठ- 48

[67] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 32

[68] वही, पृष्ठ- 41

[69] वही, पृष्ठ- 59

[70] गोस्वामी, इंदिरा (2010), नीलकंठी ब्रज (हिंदी अनुवाद- दिनेश द्विवेदी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 21

[71] गोस्वामी, इंदिरा(2011), अहिरण, चंद्र प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, पृष्ठ-19

[72] गोस्वामी, इंदिरा (2015), अहिरण (हिंदी अनुवाद- बुद्धदेव चटर्जी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 23

[73] गोस्वामी, इंदिरा(2011), अहिरण, चंद्र प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, पृष्ठ-101

[74] गोस्वामी, इंदिरा (2015), अहिरण (हिंदी अनुवाद- बुद्धदेव चटर्जी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 94

[75] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ- 309

[76] गोस्वामी, इंदिरा (2022), दँताल हाथिर उएं खोवा हौदा, चंद्र प्रकाशन, पानबाजार, गुवाहाटी, पृष्ठ- 35

[77] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 19

[78] गोस्वामी, इंदिरा (2015), थेंगफाखरीर तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, पृष्ठ- 5

[79] वही, पृष्ठ- 7

[80] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, भूमिका

[81] वही, भूमिका

[82] वही, पृष्ठ- 216

[83] वही, पृष्ठ -279

[84] एल्किन, लॉरेन(2017), फ्लैनीयूज (विमेन वाक द सिटी इन पेरिस, न्यूयॉर्क, टोक्यो, वेनिस एण्ड लंदन), विंटेज प्रकाशन, लंदन, पृष्ठ-3

[85] वही

[86] वही, पृष्ठ-9

[87] वही, पृष्ठ-288

[88] वही, पृष्ठ-288

[89] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ-130

[90] एल्किन, लॉरेन(2017), फ्लैनीयूज (विमेन वाक द सिटी इन पेरिस, न्यूयॉर्क, टोक्यो, वेनिस एण्ड लंदन), विंटेज प्रकाशन, लंदन, पृष्ठ- 23

[91] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क, पृष्ठ-278

[92] वही, पृष्ठ- 2

[93] वही, पृष्ठ- 213

[94] इगलटन, मैंरी (संपा.) (1986), फेमिनिस्ट लिटरेरी थ्योरी, ब्लैकवेल, यूनाइटेड किंगडम, पृष्ठ-182

[95] सिंह, नामवर (1978), इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 123